वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 259

भगवान पार्श्वनाथ नाटक

-लेखक-

पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज

भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित

जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280236

प्रथम संस्करण	वैशाख सुदी 3	मूल्य
5000 प्रति	11 मई 2005	10.00
	वीर नि. सं. 2531	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर के अंतर्गत संचालित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से लगभग 250 से अधिक प्रकार के ग्रंथ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं तथा प्रकाशित हो भी रहे हैं। जब जैसा अवसर आया उस प्रकार का साहित्य लिखा गया व प्रकाशित किया गया। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव से क्रम प्रारंभ हुआ, जम्बूद्वीप रथ प्रवर्तन, ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव, ऋषभदेव निर्वाण महोत्सव, ऋषभदेव समवसरण रथ प्रवर्तन, भगवान महावीर 2600वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव, प्रयाग तथा कुण्डलपुर तीर्थ निर्माण आदि के निमित्त से सुन्दर तथा आकर्षक साहित्य का प्रकाशन हुआ।

अब यह भगवान पार्श्वनाथ का तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष चल रहा है। इसमें गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी तथा आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने कई प्रकार का सरल सुबोध साहित्य भगवान पार्श्वनाथ पर लिखा।

उसी शृंखला में क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज ने भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से संबंधित नाटक लिखा है। इस नाटक के माध्यम से नाटक करने वाले पात्रों को तथा देखने वाले लोगों को भगवान पार्श्वनाथ की सहिष्णुता का सहज रूप में बोध हो सकेगा। क्षमाधारण करने से कितना लाभ है तथा क्रोध से कितनी बड़ी हानि होती है कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यह मालूम हो सकेगा। पूज्य माताजी की प्रेरणा से क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज ने जो यह नाटक लिखकर दिया है इससे जन-जन लाभान्वित हो, यही मंगल कामना है।

प्रस्तावना

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

जैन परम्परा में भगवान पार्श्वनाथ से पहले 22 तीर्थंकर हो चुके हैं। उन सबका जीवनवृत्त विशेषताओं तथा अतिशयों से भरा हुआ था। उसी प्रकार भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व के 9 भवों में तथा 10वें भव में पार्श्वनाथ की पर्याय में क्षमा की विशेषता रही।

प्रस्तुत नाटक में तो संक्षेप में पार्श्वनाथ भगवान की जीवनी को दर्शाने का प्रयास किया गया है।

भगवान पार्श्वनाथ के विषय में पार्श्वपुराण, पार्श्वनाथ चरित्र, पार्श्वाभ्युदय आदि अनेक ग्रंथ समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। उत्तरपुराण में भी चौबीस तीर्थंकरों के जीवनवृत्त में भगवान पार्श्वनाथ के विषय में भी विस्तार से पढ़ने को मिलता है। गीत-भजन भी प्रचलित हैं किन्तु नाटक के रूप में कोई प्रकाशन देखने को नहीं मिला।

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी तथा प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी की प्रेरणा से यह नाटक लिखने का मैंने प्रथम प्रयास किया है। पूज्य माताजी की भावना है कि इस पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष में जगह-जगह नाटक के माध्यम से भगवान पार्श्वनाथ के बारे में आबाल-गोपाल सभी को जानने का अवसर प्राप्त हो। क्षमा मांग लेना सरल है किन्तु क्षमा कर देना कठिन है। भगवान पार्श्वनाथ के जीव ने एक दो बार नहीं लगातार 10 भवों तक कमठ द्वारा किये गये अकारणिक उपसर्गों को सहन कर सदैव क्षमा धारण की। कभी भी प्रतिकार नहीं किया।

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन भी अतिशय पूर्ण रहा। पूर्व के 9 भवों तक उनका सगा भाई अकारणिक वैर बांधकर कष्ट देता रहा किन्तु पार्श्वनाथ सदैव क्षमा भाव धारण करते रहे। अंततोगत्वा भगवान पार्श्वनाथ के क्षमा भावों के प्रभाव से कमठ का क्रोध शांत हो जाता है। उसने शंबर देव की पर्याय में भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में मिथ्यात्व का परित्याग कर सम्यग्दर्शन को धारण कर लिया। अन्य 700 तापसी भी भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर

सम्यग्दृष्टि बन गये। देश में भगवान पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमाएं तथा मंदिर बड़ी संख्या में मिलते हैं। भगवान पार्श्वनाथ के अतिशयक्षेत्र भी बहुत हैं।

राजस्थान के श्री जीवराज पापड़ीवाल ने विक्रम संवत् 1548 में लगभग 1 लाख प्रतिमाएं बनवाकर उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई। उनमें बहुतायत से प्रतिमाएं भगवान पार्श्वनाथ की देखने में आती हैं। अब भी पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं खड्गासन तथा पद्मासन छोटी-बड़ी साइज की धातु एवं पाषाण की बन रही हैं।

भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित गीत-भजन, स्तुति-स्तोत्र भी बड़ी श्रद्धा-भक्ति से गाये जाते हैं। यथा–

(1) तुमसे लागी लगन, ले लो अपनी शरण, पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा।
(2) जय पारस जय पारस, जय पारस देवा। मात तुम्हारी वामा देवी पिता अश्व देवा।
(3) सांवरिया पारसनाथ शिखर पर भला विराजो जी।
(4) पारस प्रभु जी पार लगा दो मेरी ये नावरिया।
(5) पारस प्यारा लागो परमेश्वर प्यारा लागो।
(6) नरेन्द्रं फणेन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सुपूजे भजे नाथ शीशं।

इस नाटक की संपूर्ण विषय सामग्री पूज्य गणिनी माताजी द्वारा लिखित पुस्तक **भगवान पार्श्वनाथ** से ली गई है। नाटक में संक्षेप में पांचों कल्याणकों को लिखा गया है।

पूज्य माताजी द्वय के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे इसके लेखन कार्य में लगाकर मेरे उपयोग को स्थिर करने का मार्ग बताया।

इस नाटक में पात्रों के नाम व संख्या

(1) सौधर्म इन्द्र	(2) इन्द्राणी	(3) चार देव
(4) कुबेर	(5) श्रावक तीन	(6) श्राविका तीन
(7) निर्देशक	(8) छह देवियाँ	(9) महाराजा अश्वसेन
(10) महारानी वामादेवी	(11) द्वारपाल	(12) चार मंत्री
(13) नृत्य करने वाली देवी	(14) तापसी महीपाल तथा अन्य दो तापसी	
(15) शंबर देव		

भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का प्रारूप

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुण्डलपुर में भगवान महावीर जन्मभूमि का विकास द्रुतगति से चल रहा था तभी अनेक भक्तगण माताजी से पूछ रहे थे कि आगे किस कार्य की योजना है। ऐसा इसलिए पूछा कि लोग यह जानते हैं कि माताजी का एक काम पूरा होने से पहले अगले कार्य की घोषणा हो जाती है। माताजी ने सबको बताना प्रारंभ किया कि 6 जनवरी 2005 को बनारस में भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का उद्घाटन होगा। वह समारोह पूरे वर्ष भर तक चलेगा। यह सुनकर सभी को अतीव प्रसन्नता हुई।

अभी भगवान पार्श्वनाथ के जन्म को 2880 वर्ष हुए हैं इसलिए इसका नाम तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव रखा गया। तीन हजार वर्ष पूरे होने पर त्रिसहस्राब्दि कहलाएगा। पौष वदी एकादशी, 6 जनवरी 2005 को भव्य आयोजन के साथ भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के ससंघ सानिध्य में महोत्सव का उद्घाटन हुआ।

देश के अनेक नगरों तथा शहरों में भी भगवान पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाया गया।

भगवान पार्श्वनाथ के कल्याणकों में तीन तीर्थ प्रख्यात हैं-(1) गर्भ, जन्म एवं तपकल्याणक का तीर्थ वाराणसी (उ.प्र.) (2) केवलज्ञान कल्याणक का तीर्थ अहिछत्र (उ.प्र.) (3) मोक्षकल्याणक का तीर्थ सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर। इन तीनों तीर्थों की कमेटियों को तथा भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित अतिशय क्षेत्रों की समिति के पदाधिकारियों को बड़े रूप में कार्यक्रम करने की प्रेरणा दी है, जिससे वे तीर्थ और अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त हों तथा देशवासियों को जैनधर्म की प्राचीनता के बारे में ज्ञात होता रहे।

देश में जगह-जगह पार्श्वनाथ चालीसा, पार्श्वनाथ पूजा, पार्श्वनाथ प्रश्नोत्तरी, पार्श्वनाथ भजन प्रतियोगिता, पार्श्वनाथ निबंध प्रतियोगिता, पार्श्वनाथ भाषण प्रतियोगिता आदि के माध्यम से इस तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव को मनाया जा रहा है। यह महोत्सव आने वाली पीढ़ी को नई दिशा प्रदान करके जैनधर्म की कीर्ति पताका को दिग्दिगंतव्यापी फहराएगा, ऐसी भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थनाहै।

पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन-परिचय

–ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

अगर हम प्राचीन इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें तो उनमें हमें गुरु के उपकार तथा शिष्य की कृतज्ञता के अनेकों उदाहरण मिल जाएंगे परन्तु वर्तमान के इस कलिकाल में हमें विरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जिन्होंने अपने जीवन में कृतज्ञता, सहिष्णुता तथा परोपकार का अद्वितीय आदर्श उपस्थित किया हो। उन्हीं विरले व्यक्तियों में से पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज का व्यक्तित्व आज प्रत्यक्ष में हम सभी के सामने है जिन्होंने प्रारंभ से ही गुरु के प्रति समर्पण भाव को अपने जीवन का प्रमुख लक्ष्य बनाया।

अक्सर यह देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के पास समर्पण भाव है तो किसी के पास कृतज्ञता गुण है, किसी में अनुशासन करने की क्षमता है तो किसी के अन्दर परोपकार की भावना है परन्तु क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज में ये सारे ही गुण हमें एक साथ देखने को मिलते हैं। इन्हीं सब गुणों के कारण आज हमें विश्वप्रसिद्ध जम्बूद्वीप के दर्शन हो रहे हैं जो अपने आप में एक अद्वितीय कृति है। सम्राट चन्द्रगुप्त और एकलव्य जैसे महापुरुषों के पदचिन्हों पर चलने वाले इन महान गुरुभक्त के जीवन परिचय को चंद शब्दों में लिखना अशक्य तो है, फिर भी संक्षिप्त परिचय के माध्यम से भावों को अभिव्यक्त करने का लघु प्रयास किया जा रहा है–

आज से लगभग 65 वर्ष पूर्व दिनाँक 30 सितम्बर 1940, आश्विन वदी 14 के शुभ दिन सनावद (म.प्र.) के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी श्री अमोलकचंद जैन सर्राफ की धर्मपत्नी श्रीमती रूपाबाई ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया ''मोतीचंद''। बचपन से ही धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत मोतीचंद जी को इतने सम्पन्न परिवार के मध्य रहते हुए भी सांसारिक वैभव में रुचि नहीं रही।

कहते हैं कि जब घर में पुत्री का जन्म होता है तो माता-पिता पुत्री के जन्म से ही उसके विवाह की चिंता करने लग जाते हैं, उसके लिए धन एकत्रित करना प्रारंभ कर देते हैं और जब पुत्र जन्म होता है, तब प्रत्येक माता-पिता का सपना होता है कि मेरा बेटा बड़ा होकर घर में सुन्दर सी बहू लाएगा किन्तु मोतीचंद्र जी के माता-पिता का यह सपना अधूरा ही रह गया क्योंकि उनके ज्येष्ठ पुत्र मोतीचंद ने सन् 1958 में 18 वर्ष की लघुवय में ही स्वरुचि से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया।

चूँकि इनका गृहस्थजीवन बड़ा सुकुमाल था अतः ब्रह्मचर्य व्रत होते हुए भी इन्होंने कभी साधु-संघ में रहने का विचार नहीं किया। ये अपने नगर में होने वाले प्रत्येक धार्मिक कार्य में अग्रणी रहते थे तथा समय-समय पर धार्मिक झांकियों व नाटक आदि के माध्यम से भी समाज में धार्मिक अभिरुचि जाग्रत किया करते थे।

''होनहार को कौन टाल सकता है'' इस सूक्ति के अनुसार मोतीचंद जी के जीवन में भी एक नया अध्याय जुड़ा और सन् 1967 में पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का संघ सहित चातुर्मास सनावद में हुआ। पूज्य माताजी को जब इनके ब्रह्मचर्यव्रत के बारे में पता चला तो उन्होंने मोतीचंद को सम्बोधित किया, परिणामस्वरूप ब्रह्मचारी मोतीचंद जी सन् 1968 से संघ में शिष्य के रूप में रहने लगे।

आपने पूज्य माताजी के पास गोम्मटसार जीवकांड कर्मकाण्ड, परीक्षामुख अष्टसहस्री आदि ग्रंथों का अध्ययन करके 3-4 वर्षों के अन्दर शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं।

सन् 1965 में पूज्य ज्ञानमती माताजी के मस्तिष्क में जंबूद्वीप रचना की योजना आई। निर्माण कहाँ हो? इस पर चर्चाएँ होती रहती थीं पुनः मोतीचंद जी ने संघ में आते ही पूज्य माताजी को यह लिखकर दिया कि ''मैं तन-मन-धन से आपकी इस योजना को सफल बनाऊँगा और आप के संयम में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दूँगा। आपको किसी से पैसे की याचना नहीं करनी पड़ेगी।'' तब से लेकर आज तक अपने कर्तव्य का पालन करते हुए इस अद्भुत रचना का निर्माण हस्तिनापुर की धरा पर कराया। आपने पूज्य माताजी को जन्मदात्री मां से भी अधिक मानकर उनकी आज्ञा का शत-प्रतिशत पालन किया है।

4 जून 1982 को पूज्य माताजी की प्रेरणा व आशीर्वाद से दिल्ली के लालकिला मैदान से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरागांधी ने ''जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति रथ'' का प्रवर्तन किया। आपने 1045 दिन तक रथ के साथ पूरे भारत में भ्रमण किया तथा अपने ओजस्वी भाषण से जन-जन तक अहिंसा, शाकाहार, विश्वमैत्री आदि का संदेश प्रसारित किया।

सन् 1985 में जंबूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण होने पर आपने पूज्य माताजी के समक्ष जंबूद्वीप स्थल पर ही दीक्षा लेने की तीव्र भावना व्यक्त की, जिसे पूज्य

माताजी ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की तथा फाल्गुन शु. 9, 8 मार्च 1987 को शुभ मुहूर्त में परमपूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज ने संघ सहित हस्तिनापुर पधारकर ब्रह्मचारी मोतीचंद जी पर क्षुल्लक दीक्षा के संस्कार कर '''मोतीसागर'' नाम प्रदान किया। पूज्य आचार्यश्री ने अपने शुभाशीर्वाद में बड़े ही गौरवपूर्ण शब्दों में कहा **– आज मुझे इन्हें दीक्षा देते हुए गर्व है क्योंकि मोतीचंद की दीक्षा एक चक्रवर्ती की दीक्षा है। जिस तरह चक्रवर्ती ने छह खण्ड पर विजय प्राप्त की थी, वैसे ही इन्होंने पूरे भारत में भ्रमण करके धर्म का डंका बजाया है।''**

दीक्षा के पश्चात् भी पूज्य क्षुल्लक जी संस्थान की गतिविधियों में अपने पद के योग्य दिशानिर्देश प्रदान करते रहते हैं। पूज्य माताजी ने 2 अगस्त 1987 श्रावण शु. सप्तमी के दिन आपको संस्थान के ''पीठाधीश'' पद पर आसीन किया।

पूज्य माताजी द्वारा प्रारंभ किए गए प्रत्येक कार्यों में क्षुल्लक जी की महत्वपूर्ण भूमिका, कुशल निर्देशन, उचित अनुशासन आदि को देखते हुए पूज्य माताजी ने सन् 1997 में दिल्ली के लाल मंदिर की सभा में इन्हें ''धर्म दिवाकर क्षुल्लकरत्न'' की उपाधि से विभूषित किया।

इस प्रकार अनेकानेक गुणों के धारक क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज ने 37 वर्षों के इस दीर्घ समय में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरण सानिध्य में रहकर उनसे अनुभवज्ञान प्राप्त कर अपने ज्ञान और चारित्र की वृद्धि करके जीवन को सार्थक किया है।

वर्तमान में पौष कृ. 11, 6 जनवरी 2005 को पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का उद्घाटन जन्मभूमि वाराणसी में किया गया तथा पूज्य माताजी ने समस्त भारतवासियों को इस महोत्सव को 1 वर्ष तक धूमधाम से मनाने की प्रेरणा प्रदान की। इस महोत्सव वर्ष में भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित अनेक प्रकार के साहित्य का प्रकाशन यथासमय हो रहा है। इसी श्रृंखला में पूज्य क्षुल्लक जी ने अपनी लेखनी का सदुपयोग करते हुए ''भगवान पार्श्वनाथ नाटक'' नामक यह पुस्तक लिखकर प्रदान की है। आप सभी अपने गाँव, नगर, शहर में इस नाटक का मंचन कराकर भगवान पार्श्वनाथ के जीवन को जानें तथा अपने हृदय में उनके कुछ गुणों को अवतरित करने का प्रयास करें, यही इस पुस्तक की सार्थकता है।

पूज्य क्षुल्लक जी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की मंगल कामना करते हुए हम यही भावना भाते हैं कि आगे भी वे इसी प्रकार हमें मार्गदर्शन प्रदान कर अपने अनुभव ज्ञान से लाभान्वित करते रहें।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का मंगल आशीर्वाद

पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित वर्तमान युग में मानव मात्र को उच्च आदर्शों, भारतीय सभ्यता-संस्कृति एवं महान आत्माओं के संबंध में जानकारी प्रदान करने हेतु गीत-संगीत, औपन्यासिक शैली में रचित रोचक एवं लघु कथाएं, भजन, नाटिका, चालीसा आदि एक सशक्त माध्यम हैं। उनमें भी नाटक एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा दर्शक न सिर्फ मनोरंजन ही करता है अपितु उसमें दर्शायी गई प्रत्येक घटना को हृदयंगम करने के साथ-साथ उसे अपने जीवन में भी उतारने का प्रयास करता है।

वर्तमान समय में मेरी प्रेरणा से सम्पूर्ण भारतवर्ष में ''भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव'' राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा है। इस महोत्सव वर्ष में मैंने साधुवर्ग एवं विद्वत्वर्ग को यह प्रेरणा प्रदान की है कि अपनी लेखनी का सदुपयोग करते हुए छोटी-छोटी नाटिकाओं, प्रश्नोत्तरी, भजन, कथाओं आदि के माध्यम से जनमानस को भगवान पार्श्वनाथ की क्षमा, सहनशीलता आदि गुणों एवं उनके कल्याणकारी सिद्धान्तों से परिचित करवाएं। इसी श्रृंखला में क्षुल्लक मोतीसागर जी ने भी भगवान पार्श्वनाथ के जीवन पर नाटक लिखकर प्रदान किया है।

मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने अपनी लेखनी का सदुपयोग करते हुए प्रथम बार 'भगवान पार्श्वनाथ' नामक नाटक लिखकर सभी को भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से परिचित करवाने का सुन्दर एवं सराहनीय कार्य किया है, इससे पूर्व भी इन्होंने जैनधर्म से संबंधित प्रश्नोत्तरी आदि के माध्यम से सभी को ज्ञानार्जन कराया है। वे सदैव इसी प्रकार अपनी लेखनी द्वारा ऐसी ही समयोचित कृतियाँ जनमानस को प्रदान कर जिनधर्म की ज्ञानगंगा को प्रवाहित करें एवं धर्म की महती प्रभावना करें, यही मेरा उनके लिए बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद है तथा उनकी यह कृति सभी पाठकों व दर्शकों को भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से शिक्षा ग्रहण कर उनकी आत्मा को समुन्नत बनाने में सहकारी बनें, यही शुभाशीर्वाद है।

भगवान पार्श्वनाथ नाटक

(निम्न भजन को सभी पात्र सामूहिक रूप में सबसे पहले गावें)

भजन

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
तीन लोक के सौ इन्द्रों ने, किया तुम्हें वंदन है।।
सौ-सौ बार नमन है-2
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में, सौ-सौ बार नमन है।।टेक.।।
तीन तीर्थ माने हैं जिनके, पंचकल्याण से पावन,
वाराणसि, अहिच्छत्र और सम्मेदशिखर मनभावन।
इनके दर्शन से भक्तों के, पावन होते मन हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।1।।
वर्तमान में पार्श्वनाथ का, अतिशय खूब बखाना,
अंतरिक्ष, शिरपुर, चंवलेश्वर, मक्सी, अडिन्दा जाना।
अतिशायी कचनेर में जाकर, करो प्रभू दर्शन है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।2।।
कर्नाटक के बीजापुर में, सहस्रफणा पारस हैं,
जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में, चिन्तामणि पारस हैं।
भारत के अनेक नगरों में, पारस प्रभु मंदिर हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।3।।
गणिनी ज्ञानमती माता, कहती हैं सब भक्तों को,
पारस प्रभु के अतिशय से, परिचित करवाओ सब को।
सभी ''चन्दनामती'' वर्ष भर, उत्सव करो सफल है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।4।।

(दृश्य नं. 1)

(सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा में देवांगना का नृत्य चल रहा है। नृत्य के चलते हुए सौधर्म इन्द्र अकस्मात् सोचने लगता है। तभी वह आश्चर्यजनक मुद्रा में अपने अवधिज्ञान से जान लेता है।)

सौधर्म इन्द्र—ओ हो, आनत स्वर्ग में जो इन्द्र पद के सुखों का उपभोग कर रहे हैं उनकी आयु छह मास की ही शेष रह गई है। वे अबसे छह माह पश्चात् मध्यलोक के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में वाराणसी नगरी में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में अवतरित होने वाले हैं।

सौधर्म इन्द्राणी—हे इन्द्र महाराज! आपने बहुत ही आनंददायक सूचना प्रदान की।

उपस्थित देवगण—तीर्थंकर भगवान की जय हो, तीर्थंकर भगवान की जय हो।

सौधर्म इन्द्र—हे धनद! वाराणसी जाने के लिए शीघ्र तैयार हो जाइये। वहाँ अब से लगातार पन्द्रह महीने तक माता वामा देवी एवं पिता अश्वसेन के महल के आंगन में खूब रत्नवृष्टि कीजिए तथा वाराणसी नगरी को स्वर्ग की तरह खूब सजाकर धनधान्य से समृद्ध कर दो।

कुबेर—जो आज्ञा! मेरा सौभाग्य है कि मुझे होने वाले तीर्थंकर की नगरी को सजाने का तथा रत्नवृष्टि करने का महान सौभाग्य प्राप्त हो रहा है।

(कुबेर रत्नों को लेकर वाराणसी नगरी में आने के लिए प्रस्थान करता है।)

(दृश्य नं. 2)

(वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन के राजमहल का आंगन जहाँ महाराजा अश्वसेन तथा वामा देवी सिंहासन पर बैठे हुए हैं। वहाँ आकाश से कुबेर जय-जयकार करते हुए रत्नों की मोटी-मोटी धारा वर्षाता है।)

कुबेर—महाराज अश्वसेन की जय हो, माता-वामा देवी की जय हो।

(महाराज अश्वसेन उन रत्नों को दोनों हाथों से बांट रहे हैं।)

श्राविका नं. 1—(अपने पतिदेव को संबोधित करते हुए) हे पतिदेव! आपने देखा! आज कुबेर ने हमारी नगरी को स्वर्ग जैसा सुन्दर बना दिया।

श्रावक नं. 1—हाँ सेठानी! मैंने यह भी देखा कि धनपति कुबेर ने माता वामादेवी के आगन में रत्नों की मोटी धारा वर्षाई। करोड़ों रत्न बरसाए।

श्राविका नं. 2 –हे स्वामी! आपने सुना? कुबेर ने महाराज अश्वसेन के आंगन में करोड़ों बेशकीमती रत्न बरसाए हैं। उन रत्नों को महाराजा अश्वसेन उदारतापूर्वक प्रजा को बांट रहे हैं। हमारे महाराजा कितने दानी हैं।

श्रावक नं. 2–यह तो बताओ कि यह सब किसलिए हो रहा है?

श्राविका नं. 2–अभी तक आपको यह भी मालूम नहीं हो पाया? अब से 6 माह पश्चात् माता वामा देवी के गर्भ में तीर्थंकर का अवतार होने वाला है

कई श्रावक-श्राविका मिलकर–रत्न तो अपने घर में भी हैं किन्तु ये दिव्य रत्न हैं।

(महाराजा अश्वसेन के महल में रत्न लेने वालों की भीड़ लगी है)

श्रावक-श्राविका–महाराज अश्वसेन की जय हो, वामा माता की जय हो।

(देवियों का वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन के महल में आगमन)

देवियाँ–पिताजी प्रणाम।

महाराजा अश्वसेन–देवियों खुश रहो। अपने आगमन का कारण बताओ।

एक देवी–सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से हम पद्म आदि सरोवरों से श्री, ह्री आदि देवियाँ माताजी की सेवा करने आई हैं।

महाराजा अश्वसेन–बहुत ठीक है। आप लोग माता वामा देवी के महल में जाकर अपने-अपने कार्य में संलग्न हो जाइये।

(देवियाँ माता की सेवा में संलग्न हो जाती हैं।)

(**निर्देशक–**देखते-देखते छह माह व्यतीत हो गये, कुबेर प्रतिदिन साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वृष्टि करता रहा। प्रजाजन उन रत्नों को महाराज से बहुत श्रद्धा-भक्ति से प्रतिदिन ले जाकर अपना भंडार भर रहे थे तथा अपने भाग्य की सराहना करते तृप्त नहीं रहे थे। पूरी नगरी में महाराजा अश्वसेन की उदारता की सर्वत्र चर्चा है।)

(दृश्य नं. 3)

(महाराजा अश्वसेन के महल में माता वामादेवी का शयन कक्ष)

(**निर्देशक–**एक दिन माता वामा रात्रि में सुखपूर्वक शयन कर रही थी। देवियाँ रात्रि में भी उनकी सेवा में तत्पर थीं। रात्रि के पिछले प्रहर में माता सुन्दर-सुन्दर 16 स्वप्न देखती हैं)-(16 स्वप्न दिखावें)

(उषाकाल की मंगल बेला में बंदीजन सुप्रभात स्तोत्र का उच्चारण करने

लगते हैं। उसका श्रवण करते हुए माता शय्या पर अतिप्रसन्न मुद्रा में उठकर बैठ गईं तथा णमोकार मंत्र का उच्चारण करने लगीं।)

उठो मात खिल रही है उषा, तीर्थ वंदना स्तवन करो।
जीवन के मधुरिम क्षण में तुम, श्री जिनवर का ध्यान करो।।

देवी नं.1–हे माता! आज आप विशेषरूप से हर्षित दिखाई दे रही हैं?

माता–हे देवी! तुमने ठीक ही अनुमान लगाया। मैंने अभी कुछ देर पहले ही सोते हुए सुंदर 16 स्वप्न देखे हैं।

देवी नं. 2–माता! हमें भी बतलाइये कि आपने वे कौन-कौन से स्वप्न देखे हैं?

माता–मैं स्नान आदि करके राजदरबार में जाकर अपने पति देव को स्वप्न बताऊँगी, तभी तुम भी जान लेना।

देवी नं. 3–हाँ-हाँ! आप हमें क्यों बताओगी। अपने पतिदेव को ही पहले बताओगी।

देवी नं. 4–माता! चलिए, स्नान की समस्त तैयारी है।

(माता स्नान आदि करने के लिए देवियों के साथ जाती हैं।)

(**दृश्य–**राजदरबार में महाराज अश्वसेन अपने सिंहासन पर बैठे हैं। मंत्री आदि भी अपने-अपने आसन पर बैठे हैं।)

(महारानी वामादेवी का देवियों के साथ राजदरबार में पदार्पण)

द्वारपाल–महारानी वामादेवी राज दरबार में पधार रही हैं। (उच्च स्वर में)

महाराज–पधारिये महारानी जी! आसन ग्रहण कीजिए।

(महारानी महाराज के निकट आसन पर बैठ जाती हैं।)

महाराज–सब कुशल तो हैं न? आज सुबह-सुबह आने का अवश्य कोई विशेष कारण है।

महारानी–(प्रसन्न मुद्रा में) आपकी कृपा से सब प्रकार से कुशल मंगल है। हे स्वामि! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने एक-दो नहीं पूरे 16 स्वप्न देखे हैं। मैं उनका फल आपसे जानना चाहती हूँ। वे स्वप्न क्रमशः इस प्रकार से हैं।

(माता एक-एक स्वप्न बताती हैं तथा उसका फल महाराज स्वयं अपने अवधिज्ञान से जानकर बताते जाते हैं।)

महारानी–स्वामी! पहले स्वप्न में मैंने बहुत बड़ा सफेद ऐरावत हाथी देखा है, जो सुन्दर गर्जना कर रहा है।

महाराजा—देवि! तुमने जो ऐरावत हाथी देखा है उसका फल यह है कि तुम त्रिभुवन के गुरु बनने वाले ऐसे तीर्थंकर पुत्र को जन्म दोगी।

महारानी—दूसरे स्वप्न में मैंने उत्तम बैल देखा है, जो पद प्रहार से पृथ्वी को कँपा रहा है।

महाराजा—स्वप्न में बैल देखने से तुम्हारा पुत्र समस्त विश्व में श्रेष्ठ होगा।

महारानी—तीसरे स्वप्न में मैंने पीली-पीली अयाल वाला उत्तम सिंह देखा है।

महाराजा—देवि! स्वप्न में सिंह के देखने से तुम्हारा पुत्र अनंत बल से सहित होगा।

महारानी—हे स्वामिन्! मैंने चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को देखा है, जो कमल के आसन पर बैठी हैं और दो हाथी सुवर्ण कलशों से उनका अभिषेक कर रहे हैं।

महाराजा—देवि! अभिषेक को प्राप्त होती हुई लक्ष्मी को देखने से वह पुत्र सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा।

महारानी—पाँचवे स्वप्न में बढ़िया, सुन्दर और सुगंधित फूलों की मालाएँ देखी हैं।

महाराजा—हे देवि! स्वप्न में मालाओं के देखने से तुम्हारा पुत्र सच्चे धर्मतीर्थ को चलाने वाला होगा।

महारानी—छठे स्वप्न में पूर्ण चन्द्रमा देखा है, जिसको चारों तरफ से तारा मण्डल घेरे हुए है और जिसकी पूर्ण चाँदनी छिटक रही है।

महाराजा—पूर्ण चन्द्रमा देखने से वह समस्त लोगों को परम आनन्द देने वाला होगा।

महारानी—सातवें स्वप्न में उगता हुआ सूर्य देखा है।

महाराजा—देवि! तुम्हारा पुत्र भी सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा।

महारानी—स्वामिन्! आठवें स्वप्न में मैंने सुवर्ण के दो कलश देखे हैं जिन पर कमल रखे हुए हैं।

महाराजा—प्रिये! दो कलशों को देखने से वह पुण्यरूप अनेक निधियों का स्वामी होगा।

महारानी—नाथ! नवमें स्वप्न में मैंने कुमुद और कमलों से शोभायमान ऐसे तालाब में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखी हैं।

महाराजा—देवि! मछलियों के देखने से वह सुख सरोवर में अवगाहना

करने वाला होगा।

महारानी—दशवें स्वप्न में सरोवर देखा है जिसके पानी के ऊपर कमलों की केसर फैल जाने से ऐसा लगता था मानों पिघला हुआ सुवर्ण ही चमक रहा हो।

महाराजा—इस तालाब के देखने से वह महापुरुष अनेक लक्षणों से शोभित होगा।

महारानी—ग्यारहवें स्वप्न में मुझे ऐसा विशाल समुद्र दिखा है जो कि उठती हुई लहरों से मानो अट्टहास कर रहा हो।

महाराजा—समुद्र के देखने से वह पुत्र अपने ज्ञान को पूर्ण कर केवल ज्ञानी बनेगा।

महारानी—बारहवें स्वप्न में मैंने ऐसा स्वर्णमयी सिंहासन देखा है कि जिसमें अनेक प्रकार के चमकीले मणि जड़े हुए हैं।

महाराजा—इस दिव्य सिंहासन के देखने से वह जगत का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा।

महारानी—तेरहवें स्वप्न में मैंने स्वर्ण विमान देखा है जो कि बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों से देदीप्यमान हो रहा है।

महाराजा—देवविमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा।

महारानी—चौदहवें स्वप्न में मुझे पृथ्वी को भेद कर आता हुआ नागेन्द्र भवन दिखा है।

महाराजा—हे सुमुखी! नागेन्द्र भवन के देखने से वह पुत्र अवधिज्ञानरूपी लोचनों से सहित होगा।

महारानी—पंद्रहवें स्वप्न में मैंने रत्नों की राशि देखी है, जिसकी किरणों से आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा-सी बन गई थी।

महाराजा—देवि!इन चमकते हुए रत्नों के ढेर के देखने से वह पुत्र अनेक गुणरत्नों की खान होगा।

महारानी—हे देव! सोलहवें स्वप्न में मैंने जलती हुई प्रकाशमान धूम रहित अग्नि देखी है।

महाराजा—प्रिये! इस निर्धूम अग्नि के देखने से तुम्हारा पुत्र कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा।

महारानी—अंत में मैंने अति सुंदर एक बलिष्ठ श्वेत बैल को अपने मुख में प्रविष्ट करते हुए देखा।

महाराजा—हे देवी! आपने स्वप्नों के अंत में मुख में प्रविष्ट होते हुए जो श्वेत बैल देखा है वह यह बता रहा है कि तुम्हारे उदर में तीर्थंकर का जीव स्वर्ग से आकर प्रविष्ट हो चुका है।

महारानी—(प्रसन्न मुद्रा में) हे स्वामि! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो भगवान मेरी गोद में ही हैं।

देवियाँ—हे माता! आपके स्वप्नों तथा उनका फल सुनकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई।

(महारानी वामा देवी देवियों के साथ प्रसन्न मुद्रा में वापस अपने महल की तरफ प्रस्थान करती हैं।)

(माता के महल में संगीत-भजन)

(दृश्य नं. 4)

(हिमवान पर्वत पर पद्म सरोवर में बहुत बड़ा कमल खिल रहा है। उसकी कर्णिका पर श्री देवी का भवन है। उसके सभागृह में श्री देवी आसन पर बैठी हैं। अन्य देवियाँ भी बैठी हैं।)

स्थान—श्री देवी की सभा

समय—प्रातःकाल

(श्री देवी खड़ी होकर अन्य देवियों को संबोधित कर रही हैं।)

श्री देवी—देवियों! आज हम सबके लिए महान पुण्य का अवसर आया है। सौधर्म इन्द्र का आदेश आया है कि हम सभी को वाराणसी चलना है।

ह्री देवी—वहाँ जिनमाता वामा देवी की सेवा करके अपनी देवी पर्याय को सफल बनाना है।

धृति देवी—सच है, हम देवियों के सिवाय जिनमाता की सेवा का पुण्य भला किसको मिल सकता है।

कीर्ति देवी—श्री देवी! अब देर किसलिए! आओ चलें।

(**निर्देशक**—छहों देवियाँ अन्य अनेक परिवार देवियों के साथ हिमवान पर्वत से चलकर वाराणसी में माता वामादेवी के महल में जयकार करते हुए प्रवेश कर पंचाग नमस्कार करती हैं।)

(स्थान—माता वामादेवी का महल)

श्री देवी—माता! हम सब देवियाँ प्रणाम कर रही हैं।

माता—देवियों! खुश रहो। आओ, आप सब कहाँ से आ रही हो?

श्री देवी—माता! हम हिमवान आदि कुलाचलों के सरोवरों में कमलों पर निवास करती हैं। श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मीये हम छहों के नाम हैं।

लक्ष्मी देवी—माता! सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से हम सब आपकी परिचर्या के लिए यहाँ आई हुई हैं।

ह्री देवी—हे माता! हम लोगों को आज्ञा दीजिए, क्या करें?

माता—(हंसते हुए) बैठो! समय पर काम करना।

(देवियाँ स्वयं ही कुछ न कुछ कार्य में संलग्न हो जाती हैं- माता को हार पहनाती हैं, पैर दबाती हैं, चंवर ढोरती हैं, नृत्य करती हैं, मंगल गीत गाती हैं।

मंगल गीत

लक्ष्मी देवी— हे मात तेरे गर्भ में तीर्थेश बस रहे।
हे मात तेरी अर्चना सुरेश कर रहे।।
हे मात तेरी भक्ति से सब पाप धुल रहे।
हे मात कृपा दृष्टि तेरी हम सभी चहें।।

(सभी देवियाँ मिलकर माता से प्रश्नोत्तर करती हैं)

(क्रमशः श्री, ह्री आदि देवियाँ एक-एक प्रश्न करती हैं माता उनका उत्तर देती हैं)

श्री देवी—हे माता! हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर हमारा ज्ञानवर्धन कीजिए।

श्री देवी—हे माताः! मरण क्या है?

माता—मूर्खता ही मरण है।

श्री देवी—अमूल्य वस्तु क्या है?

माता—समय पर दिया गया दान अमूल्य है।

श्री देवी—और मरणपर्यंत जो काँटे की तरह चुभती रहे वह क्या है?

माता—गुप्त रीति से किया गया कुकर्म, यह जीवन भर हृदय में चुभता जाता है।

ह्री देवी—हे मातः! यत्न कहाँ करना चाहिए?

माता—विद्या अभ्यास करने में, अच्छी औषधि खोजने में और दान देने में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

धृति देवी—हे मातः! इस संसार में ग्रहण करने योग्य क्या है?

माता—गुरु के वचन जो कि मोक्षमार्ग में लगाने वाले हैं।

धृति देवी–और छोड़ने योग्य क्या है?

माता–अकार्य–पापादि निंद्य कार्य।

धृति देवी–माता! गुरु कौन हैं?

माता–जो तत्त्वों का स्वरूप जानते हैं और निरन्तर प्राणियों के कल्याण करने में तत्पर रहते हैं।

कीर्ति देवी–हे माता! मार्ग के लिए नाश्ता क्या है?

माता–धर्म है।

कीर्ति देवी–संसार में शुद्ध कौन है?

माता–जिसका नाम पवित्र है।

कीर्ति देवी–पंडित कौन है?

माता–विवेकी पुरुष–जिसे अपने हित-अहित का ज्ञान है।

कीर्ति देवी–विष क्या है?

माता–गुरुओं का तिरस्कार और अपमान।

बुद्धि देवी–हे मातः! दान क्या है?

माता–जिसे देकर बदले में कुछ न चाहा जाये।

बुद्धि देवी–मित्र कौन है?

माता–जो पापों से हटाता है।

बुद्धि देवी–अलंकार क्या है?

माता–शील ही परम भूषण है।

बुद्धि देवी–और वाणी का भूषण क्या है?

माता–सत्य है।

लक्ष्मी देवी–हे मातः! अंधा कौन है?

माता–जो निंद्यकार्यों में रत है।

लक्ष्मी देवी–बहरा कौन है?

माता–जो अपने हित की बात नहीं सुनता।

लक्ष्मी देवी–और गूँगा कौन है?

माता–जो समय पर मधुर वचन बोलना नहीं जानता।

(**दृश्य**–सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी तथा परिकर के साथ सुधर्मा सभा में बैठे हुए हैं। अप्सरा के नृत्य का आदेश इन्द्र करते हैं। नृत्य के मध्य ही इन्द्र का सिंहासन हिलने लगता है।)

इन्द्राणी–हे इन्द्रराज! आपका यह सिंहासन अपने आप क्यों हिल रहा है। क्या भूकंप आया है या भूचाल?

इन्द्र–देवी! स्वर्ग में भूकंप या भूचाल कभी नहीं आते। यह तो सुखद घटना का प्रतीक है। मध्यलोक में वाराणसी नगरी में राजा अश्वसेन की रानी वामा देवी के गर्भ में तेइसवें तीर्थंकर अवतरित हुए हैं। उनका गर्भकल्याणक मनाने के लिए सबको चलना है।

इन्द्राणी–स्वामी! आपने यह तो बहुत ही शुभ समाचार सुनाया।

इन्द्र–धनपति कुबेर! वाराणसी चलने की तैयारी कीजिए।

कुबेर–जो आज्ञा महाराज।

(इन्द्र, कुबेर तथा चारों निकाय के देव परिकर के साथ वाराणसी नगरी में आता है। साथ में श्री ह्री, आदि देवियों को भी साथ में चलने का आदेश दिया।)

(राजमहल में इन्द्र तथा देव-देवियों का प्रवेश)

(इन्द्र तथा देवियाँ मिलकर महाराजा अश्वसेन तथा वामा देवी की जय-जयकार करते हैं।)

महाराजा अश्वसेन की जय, माता वामादेवी की जय।

इन्द्र–हे माता! आप महान सौभाग्यशाली हैं, पुण्यशाली हैं। आपको त्रिलोकपति तीर्थंकर को अपने गर्भ में धारण करने का स्वर्णिम योग प्राप्त हुआ है।

इन्द्राणी–हे जगदम्बे! स्वर्ग से हम लोग दिव्य वस्त्रालंकार आपको भेंट में देने के लिए लाये हैं। कृपया इन्हें स्वीकार कीजिए।

माता–ठीक है, आपकी भेंट स्वीकार है।

(इन्द्र माता को वस्त्रालंकार भेंट करता है।)

इन्द्र–हे देवियों! अब तुमको पुत्र जन्म तक माता की सेवा करनी है। माता को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। सदैव हर्ष पूर्ण वातावरण बनाये रखो।

निर्देशक–(इस प्रकार सौधर्म इन्द्र माता-पिता की पूजा अर्चना करके गर्भकल्याणक का उत्सव मनाकर वापस स्वर्ग में चला जाता है।)

(कुबेर द्वारा आकाश से रत्नवृष्टि)

कुबेर–महाराज की जय हो, माता वामादेवी की जय हो।

(देवियाँ माता की सेवा कर रही हैं, कोई हाथ-पैर दबा रही हैं, कोई पंखा कर रही हैं, कोई चंवर ढोर रही हैं, कोई हाथ में तलवार लेकर रक्षा में तैनात हैं। कोई धर्म चर्चा करके माता का मनोरंजन कर रही हैं।)

(दृश्य नं. 5)

(**निर्देशक**—9 माह व्यतीत होने पर वामा माता ने पौष कृ. एकादशी के शुभ दिन, शुभ नक्षत्र में तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। वाराणसी नगरी में तो खुशियाँ छा ही गईं। पूरे तीन लोक में एकक्षण के लिए हर्ष की लहर दौड़ गई। नरकों के नारकियों को भी एक क्षण के लिए सुख का आभास होता है।)

(सौधर्म स्वर्ग में सुधर्मा सभा में आनंद का वातावरण छाया हुआ है। अप्सरा का नृत्य चल रहा है, उसी मध्य अचानक सौधर्म इन्द्र का आसन कंपायमान होने लगता है।)

सौधर्म इन्द्र—यह सिंहासन क्यों कंपायमान हो रहा है?

इन्द्राणी—आपका सिंहासन असमय में क्यों हिल रहा है?

(अवधिज्ञान से इन्द्र जानने का प्रयास कर रहे हैं)

इन्द्र—हे शचि! यह असमय नहीं है। यह तो शुभ समय का सूचक है। देखो! कल्पवृक्षों से स्वयमेव पुष्पवृष्टि हो रही है।

इन्द्राणी—हे स्वामी! हमें यह शीघ्र बतलाइये कि आपको कौन सी शुभ सूचना प्राप्त हुई है?

इन्द्र—मैं अभी बतलाता हूँ। देवी! इतनी उतावली क्यों हो रही हो?

इन्द्राणी—शुभ समाचारों को बतलाने में इतनी देरी नहीं की जाती।

इन्द्र—लो, सुन लो। तुम्हें भी अतीव हर्ष होगा। मध्यलोक के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में वाराणसी नगरी में माता वामा देवी ने तीर्थंकर शिशु को जन्म दिया है।

इन्द्राणी—इस पुनीत समाचार को सुनकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया।

(संपूर्ण देव-देवियाँ भी यह शुभ सूचना सुनकर गद्‌गद् होकर जय-जयकार करके स्वर्ग लोक को गुंजायमान कर देते हैं।)

सभी देवगण महाराजा अश्वसेन की जय हो, वामा माता की जय हो, तीर्थंकर देव की जय हो, वाराणसी नगरी की जय हो।

(सौधर्म इन्द्र अपने आसन से उठकर सात हाथ आगे बढ़कर तीर्थंकर को परोक्ष में पंचाग नमस्कार करता है)

सौधर्म इन्द्र—तीर्थंकर भगवान की जय, माता वामा देवी की जय, महाराजा अश्वसेन की जय।

सौधर्म इन्द्र—हे देव! शीघ्र ही वाराणसी चलने की तैयारी कीजिए। वहाँ चलकर भगवान का जन्मोत्सव मनाना है। सभी देव-देवियाँ भी गाजे-बाजे से साथ में चलिए।

देव—जो आज्ञा इन्द्रराज! ऐरावत हाथी तैयार है।

(सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी तथा असंख्य देव-देवियों के साथ वाराणसी नगरी के लिए प्रस्थान करते हैं। जन्मोत्सव में चारों प्रकार के देव-देवियाँ सम्मिलित हुए।)

(दृश्य नं. 6)

(**निर्देशक**—सौधर्म इन्द्र वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन के राजमहल में पहुँचने से पहले नगरी की तीन परिक्रमा लगाता है। पुनः राजमहल में इन्द्राणी सहित प्रवेश करते हैं।)

(इन्द्र प्रसूति गृह के बाहर खड़ा हो जाता है। इन्द्राणी प्रसूती गृह की तीन परिक्रमा लगाती है।)

इन्द्राणी—वामा माता की जय। पार्श्वनाथ भगवान की जय।

सौधर्म इन्द्र—हे शचि इन्द्राणी! आप बहुत पुण्यशाली हो। प्रसूतिगृह में जाकर जन्माभिषेक के लिए तीर्थंकर बालक को माता के पास से लाने का, उन बालसूर्य के मुखावलोकन करने का, उनको अपनी गोद में लेने का मुझसे भी पहले अवसर तुम्हें प्राप्त हो रहा है।

हे महाभाग! जाओ, तीर्थंकर बालक को शीघ्र ही लेकर आओ।

इन्द्राणी—जो आज्ञा इन्द्रराज।

निर्देशक—(इन्द्राणी प्रसूतिगृह में जाकर माता की तीन परिक्रमा लगाकर नमस्कार करके माता को मायामयी निद्रा से युक्त करके माता के पास मायामयी बालक को सुलाकर तीर्थंकर शिशु को अपनी गोद में लेकर अत्यंत हर्षायमान होकर मुखावलोकन करने लगी। उसी समय उसने स्त्री पर्याय का छेद कर लिया।)

इन्द्राणी—लीजिए इन्द्रराज, बालसूर्य को अपनी गोद में लीजिए।

इन्द्र—आज मेरा भी महान भाग्योदय है कि मुझे इन तीर्थंकर बालक को अपनी गोद में लेकर इनका दिव्य रूप निहारने का पुनीत अवसर प्राप्त हो रहा है।

एक देव—मित्र! आप देख रहे हैं। हमारे स्वामी को इन जगत्पति को दो

आँखों से दर्शन करने से संतुष्टी नहीं हुई तो इन्होंने हजार नेत्र बना लिए हैं।

द्वितीय देव—इन्द्र महाराज अपनी गोद में भगवान को लेकर पुण्योपार्जन कर रहे हैं। हम लोग भक्ति नृत्य गान करके पुण्योपार्जन करें।

(सभी देव-देवियाँ मिलकर भक्ति नृत्य करते हैं।)

निर्देशक—(नृत्य के पश्चात् सौधर्म इन्द्र भगवान को अपनी गोद में लेकर इन्द्राणी के साथ ऐरावत हाथी पर बैठकर समस्त देव-देवियों के साथ भगवान को सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक के लिए आकाश मार्ग से प्रस्थान करता है।)

(वाराणसी से 20 करोड़ मील की दूरी पर स्थित परम पवित्र सुमेरु पर्वत की तीन प्रदक्षिणा देकर पांडुक शिला पर उन बाल तीर्थंकर को विराजमान करके अपनी इन्द्राणी सहित विशाल दिव्य 1008 कलशों से अभिषेक करता है। वहाँ उपस्थित देव-देवियाँ भी भक्तिपूर्वक अभिषेक करते हैं।)

इन्द्र—हे शचि! शीघ्र ही प्रभु को दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत कीजिए। तिलक लगाइये। काजल लगाइये।

इन्द्राणी—हे इन्द्रराज! अब इनका नामकरण कीजिए।

इन्द्र—(जयकार के साथ नाम की घोषणा करता है) जय बोलो पार्श्वनाथ भगवान की जय।

(सभी देवगण भी मिलकर जोर से जयकार करते हैं।)

इन्द्र—चलिए! सभी देवगण वाराणसी चलें। तीर्थंकर भगवान को माता के सुपुर्द कर दें।

(सभी देव-देवियाँ नाचते गाते वाराणसी आते हैं।)

(वाराणसी नगरी में अश्वसेन महाराज के राजमहल में माता प्रसूतिगृह में सोई हुई हैं।) इन्द्राणी प्रसूतिगृह में जाकर माता की नींद भंग कर जिनबालक को सौंपती हैं।

इन्द्र—हे महाराज! मैंने सुमेरु पर्वत पर भगवान का पूर्ण विधि से जन्माभिषेक किया, किन्तु वाराणसी की जनता उस जन्माभिषेक को नहीं देख पाई अतः मैंपुनः यहाँ उसी संपूर्ण विधि को करना चाहता हूँ। आप आज्ञा दीजिए।

महाराज—यहाँ जन्मोत्सव देखकर हमें भी बहुत प्रसन्नता होगी।

(अभिषेक देखकर वाराणसी की जनता अति प्रफुल्लित हुई)

(अंत में इन्द्र तांडव नृत्य करके समस्त देव परिकर के साथ वापस स्वर्ग चला जाता है।)

(दृश्य नं. 7)

(**दृश्य**—पालना झुलाना) (निर्देशक-माता वामादेवी एवं महाराज अश्वसेन पार्श्वकुमार को पालना झुलाकर आनंद मगन हो रहे हैं। नगर निवासी भी पालना झुलाकर अपूर्व पुण्य अर्जित कर रहे हैं।)

(धीरे-धीरे पार्श्वप्रभु इन्द्र द्वारा उनके अंगूठे में स्थापित किये हुए अमृत का पान कर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं।)

निर्देशक—(पार्श्वनाथ जन्म से तीन ज्ञान के धारी थे, उन्हें पाठशाला में पढ़ने जाने की आवश्यकता नहीं थी। वे तो जगद्गुरु थे।

(**दृश्य**—बालक्रीड़ा—अनेक देवगण अपने शरीर को बालक पार्श्वनाथ की वय का बनाकर उनका मनोरंजन कर रहे हैं। साथ में नगरी के बालक भी उनके साथ क्रीड़ा करके पुण्य उपार्जित कर रहे हैं।) (कुछ खेलों का प्रदर्शन जैसे-कबड्डी, खो-खो, गेंद, रस्सा-कसी आदि।)

(महाराज अश्वसेन तथा वामा देवी राजमहल में सिंहासन पर बैठे हैं पास में पार्श्वप्रभु बैठे हैं। 16 वर्ष की युवावस्था को देखकर महाराज अश्वसेन अपने कर्तव्य के नाते भगवान पार्श्वनाथ के समक्ष उनके विवाह का प्रस्ताव रखते हैं।

महाराज अश्वसेन—हे युवराज! अब आपकी वय विवाह के योग्य है। हम आपका विवाह करना चाहते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ—हे पिताश्री! मैं विवाह के बंधन में नहीं बंधूँगा।

(दृश्य नं. 8)

(वाराणसी के उद्यान में एक जटाधारी साधु पंचाग्नि तप कर रहे हैं। पार्श्वनाथ वहाँ कुछ मित्रों के साथ टहल रहे हैं। पार्श्वनाथ उन तापसी के पास बिना नमस्कार किये खड़े हो जाते हैं।)

तापसी—अहो! मैं इस बालक का नाना हूँ तथा तापसी भी हूँ फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है। (उस समय अतिक्रोध में आकर वह तापसी हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरने लगा।)

(पार्श्वनाथ—उस तापसी को ऐसा करने से रोकते हुए उस तापसी से कह रहे हैं।)

पार्श्वनाथ—हे तापसी! इस लकड़ी को मत काटो, इसमें नाग युगल बैठे हैं।

तापसी—(क्रोध मुद्रा में) अरे बालक! क्या तू नारायण, महादेव या ब्रह्मा

का अवतार है जो कि संपूर्ण चराचर का ज्ञाता बन रहा है। तू कैसे कह रहा है कि इस लकड़ी में सर्प युगल बैठे हैं?

(ऐसा कहते-कहते उस तापसी ने पुनः कुल्हाड़ी हाथ में लेकर लकड़ी के दो टुकड़े कर दिये। उस लकड़ी के भीतर से छटपटाते हुए नागयुगल निकल पड़े। उन्हें छटपटाते देख पार्श्वकुमार उन्हें संबोधन करने लगे)

निर्देशक—(णमोकार मंत्र सुनते हुए वे नागयुगल उसी समय मरकर धरणेन्द्र पद्मावती नाम के धारक भवनवासी देव हो गये।)

पार्श्वनाथ—हे तापसी! तुम व्यर्थ ही गर्व कर रहे हो। ज्ञान के बिना तुम मात्र अपने तन को कष्ट दे रहे हो। तुम्हारे मन में दया के बिना धर्म कैसा?

पार्श्वनाथ—हे नागयुगल! तुमने क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय तथा हिंसा, झूठ आदि पापों से तिर्यंचयोनी प्राप्त की है। अब शांत भाव से अरहंत सिद्ध आदि पंच परमेष्ठियों का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ोगे, तो देव पर्याय प्राप्त होगी।

तापसी—अरे कुमार! मैं तेरी माता का पिता हूँ तथा इस समय तपस्वी हूँ फिर भी तूने अभिमान के वशीभूत होकर विनय नहीं किया। उल्टे तू मेरे तप की निंदा कर रहा है। मेरा तप अज्ञान तप क्यों है? मैं पंचाग्नि तप कर रहा हूँ। कभी एक पैर से तो कभी हाथ को ऊँचा करके तप कर रहा हूँ। भूख-प्यास की बाधा सहन करते हुए सूखे पत्तों से पारणा करता हूँ।

पार्श्वनाथ—तपस्वी! जिसमें छह काय के जीवों की हिंसा होती है वह तप उत्तम तप नहीं है। सम्यग्ज्ञान के बिना केवल कायक्लेश उत्तम फल को नहीं दे सकता। मैंने तुम्हें हितकर बात बताई है। व्यर्थ ही अपने मन को मलिन मत करो।

निर्देशक—(यह तापसी कमठ का ही जीव है। इसी भव में महिपालपुर का राजा महिपाल था। अपनी पट्टरानी के मरणोपरांत वियोगजन्य दुःख से दुखी होकर तापसी बन गया।)

(दृश्य नं. 9)

(वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन के राजमहल में तीर्थंकर पार्श्वकुमार सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। धीरे-धीरे आयु की वृद्धि को प्राप्त करते हुए तीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त किया।)

एक दूत का प्रवेश—पार्श्वनाथ की जय हो, पार्श्वनाथ की जय हो। हे भगवन्! मैं अयोध्या नरेश जयसेन महाराज के राजदरबार से आया हूँ। उनके द्वारा भेजी हुई भेंट स्वीकार कीजिए।

(अनेक प्रकार की वस्तुएं भेंट में प्रदान कर नमस्कार करता है)

पार्श्वनाथ—हे दूत! मुझे अयोध्या के वैभव के बारे में विस्तार से बताइये।

दूत—अयोध्या की महिमा अपरम्पार है, जहाँ ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों ने जन्म लेकर संसार को जीवन जीने की कला सिखाई तथा स्वयं ने सिद्धि रमा का वरण कर परम सुख की प्राप्ति की।

पार्श्वनाथ—(चिंतन मुद्रा में) अहो! उन तीर्थंकरों ने उत्तम भोगों का भी त्याग कर आत्म सिद्धि की प्राप्ति की है। अब मेरा भी आत्म साधना का समय आ चुका है। जब इन्द्रों के वैभव से जीव को तृप्ति नहीं हो सकती तब किंचित् मात्र मनुष्य भव के सुखों से क्या तृप्ति हो सकती है। जब सागर के जल से तृष्णा नहीं बुझ सकती तो क्या घास पर पड़ी हुई ओंस बिंदु से तृप्ति हो सकती है? कभी नहीं।

(**निर्देशक**—जिनेन्द्र देव संसार, शरीर तथा भोगों की क्षण भंगुरता के विषय में चिंतन करते हुए बारह भावनाएं भा रहे हैं) (लौकांतिक देवों का आगमन)

(आते ही सभी देव पुष्पांजलि क्षेपण करके नमस्कार करते हैं)

सभी लौकांतिक देव—भगवान पार्श्वनाथ की जय हो, तीर्थंकर भगवान की जय हो।

लौकांतिक देव नं. 1—हे देवाधिदेव! आप धन्य हैं, आपकी विचार सरिता धन्य है।

लौकांतिक देव नं. 2—हे दयानिधे! यह समय भी धन्य है जबकि आपने मोहसेना को जीतने के लिए तैयारी की है।

लौकांतिक देव नं. 3—हे नाथ! आज शिवकांता अपने सौभाग्य की सराहना कर रही है और उसी की प्रतीक्षा में तपस्या सखी को भेजकर आपको अपनी ओर आकृष्ट करना चाह रही है।

लौकांतिक देव नं. 4—हे जिननाथ! जगत् के जीवों का आज महान पुण्य अवसर आया है जो कि आपने उनके उद्धार के लिए कदम उठाया है।

(**निर्देशक**—लौकांतिक देव भगवान के वैराग्य की अनुमोदना करते हुए

नमस्कार कर जयकार करते हुए वापस अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं।)

निर्देशक—(पार्श्वनाथ को वैराग्य होते ही सौधर्म इन्द्र का आसन कंपित होता है। इन्द्र अवधिज्ञान से जानकर कुबेर तथा सभी देव-देवियों को वाराणसी में तपकल्याणक मनाने हेतु चलने के लिए आदेश देते हैं।

(असंख्य देव-देवियों ने मिलकर वाराणसी नगरी को स्वर्ग से भी अधिक रमणीक बना दिया।)

(दृश्य—वाराणसी नगरी में महाराजा अश्वसेन का राज दरबार)

(सौधर्म इन्द्र का कुबेर एवं देवों के साथ राज दरबार में पदार्पण)

सौधर्म इन्द्र—भगवान पार्श्वनाथ की जय हो, त्रिलोकीनाथ की जय हो। आपने जगत् के कल्याण के लिए अति उत्तम विचार किया है।

(सभी युवराज पार्श्वनाथ को नमस्कार करते हैं।)

सौधर्म इन्द्र—हे देव! युवराज पार्श्वनाथ के दीक्षापूर्व अभिषेक की शीघ्र तैयारी कीजिए।

देव—जो आज्ञा इन्द्रराज।

(**निर्देशक**—सौधर्म इन्द्र युवराज पार्श्वनाथ को अभिषेक के अनंतर नूतन वस्त्राभूषण पहनाकर ''विमला'' नामक पालकी में विराजमान करता है। पालकी को पहले भूमिगोचरी राजा सात कदम आगे तक ले जाते हैं। अनंतर सात कदम तक विद्याधर राजा ले जाते हैं। पुनः देवों के साथ आकाशमार्ग से 'अश्व' वन में पहुँचकर वटवृक्ष के नीचे रत्नमयी शिलापर इन्द्राणी द्वारा रत्नचूर्ण से बनाये गये स्वस्तिक पर विराजमान होने के लिए निवेदन करता है।)

सौधर्म इन्द्र—हे प्रभु! मंगल स्वस्तिकासन पर विराजिये।

(प्रभु पार्श्व पालकी से उतरकर उत्तरमुख होकर स्वस्तिकासन पर विराजमान हो गये।)

पार्श्व प्रभु—''नमः सिद्धेभ्यः''

(ऐसा उच्चारण कर पंचमुष्टी केशलोंच प्रारंभ कर देते हैं। उन केशों को सौधर्म इन्द्र रत्न पिटारे में रखकर बड़े उत्सव के साथ क्षीरसमुद्र में विसर्जित कर देते हैं। तीन सौ राजा भी भगवान के साथ दिगम्बर मुनि बन जाते हैं।)

(केशलोंच के पश्चात् भगवान पार्श्वनाथ वस्त्राभूषणों का त्याग कर परम दिगम्बर जिनमुद्रा का धारण करते हैं। दिगम्बर मुनि बन जाते हैं।)

(दीक्षा के पश्चात् तेले का नियम लेकर ध्यान में खड़े हो जाते हैं। ध्यान

में खड़े होते ही अंतर्मुहूर्त में तीन ज्ञान के धारी भगवान पार्श्वनाथ को चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया।

(दीक्षाकल्याणक मनाकर समस्त इन्द्र तथा देवगण वापस स्वर्ग में चले जाते हैं।)

(भगवान पार्श्वनाथ को प्रथम आहार देने का सौभाग्य गुल्मखेटपुर के महाराज ब्रह्मदत्त को मिला था।

(दृश्य—भगवान पार्श्वनाथ वन में ध्यान मग्न हैं। आकाश मार्ग से शंबर देव अपने विमान में बैठकर जा रहा था। उसका विमान रुक जाता है। उसने अवधिज्ञान से पूर्व भव के बैर को जानकर क्रोधित होकर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। यह देव पूर्व भव के कमठ का जीव था।)

शंबर देव—अरे! किस बैरी ने मेरा विमान रोक दिया? (चिंतन मग्न होते हुए) यह तो मेरा पूर्वभव का शत्रु है। ढोंगी बनकर ध्यान लगा रहा है। देखता हूँ कैसा ध्यान है?

हे बैतालों! जोर की आंधी चला दो, पत्थर बरसाना प्रारंभ कर दो।

अरे! यह तो टस से मस नहीं हो रहा है। बैतालों, ओले बरसाओ।

(वह शंबर देव स्वयं अग्नि उगलने लगा)। अरे! इस पर तो कुछ भी असर नहीं हो रहा है। लगता है जैसे पत्थर का है। मुझे सात दिन व्यतीत हो गये।

(**निर्देशक**—जब प्रभु कई भवों से इस पापी के उपसर्ग को सहन कर ही रहे थे तब पुनः अब तो वे साक्षात तीर्थंकर थे, क्षमा की मूर्ति थे तथा कर्मशत्रु के विजेता महाशूरवीर थे। उन पर किसी भी प्रकार के उपसर्ग का प्रभाव कैसे हो सकता है।)

(इस उपसर्ग के प्रसंग में सहसा धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा।)

धरणेन्द्र—अरे! यह मेरा आसन क्यों कंपायमान हो रहा है।

(चिंतन मुद्रा में अवधिज्ञान से जानकारी लेने के लिए प्रयास रत)

धरणेन्द्र—ओ हो! भगवान पार्श्वनाथ पर पूर्वभवों का बैरी शत्रु शंबर देव अकारणिक उपसर्ग कर रहा है। भगवान तो ध्यान मग्न हैं। मेरा कर्तव्य है कि वहाँ अपनी भार्या पद्मावती देवी सहित जाकर उस दुष्ट को भगाकर प्रभू की भक्ति करूँ। इन्हीं जिनेन्द्र की कृपा से हम णमोकार मंत्र का श्रवण करते हुए सर्प की पर्याय से देव की पर्याय को प्राप्त हुए हैं।

(धरणेन्द्र-पद्मावती ने मस्तक पर भगवान को धारणकर ऊपर से फणाकार छत्र तानकर उपसर्ग दूर करते हुए अपनी भक्ति प्रदर्शित की।)

(**निर्देशक**—धरणेन्द्र-पद्मावती के आते ही वह दुष्ट शंबर देव भाग जाता है।)

(जहाँ उपसर्ग दूर हुआ उस स्थान का नाम 'अहिछत्र' प्रसिद्ध हो गया। वर्तमान उ.प्र. के बरेली जिले के निकट विशाल तीर्थ के रूप में स्थित है।)

निर्देशक—(उसी समय महाप्रभु सातिशय निर्विकल्प ध्यान में स्थिर हो गये। श्रेणी आरोहण करके घातिया कर्मों का नाश कर दिया। जिससे परम ज्योति स्वरूप दिव्य केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।)

(दृश्य नं. 10)

(सौधर्म इन्द्र की सभा)

सौधर्म इन्द्र—मेरा आसनकंपित हो रहा है। कोई विशेष बात है। मैं अभी बताता हूँ। वाह! बहुत शुभ संदेश है। भगवान पार्श्वनाथ को परम उत्कृष्ट केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। हे धनपति कुबेर! शीघ्र ही मध्यलोक में जाकर केवली भगवान के समवसरण की रचना करो।

कुबेर—जो आज्ञा इन्द्र महाराज! अभी जाकर धरती से अधर आकाश में पाँच हजार धनुष (20 हजार हाथ) की ऊँचाई पर अतिशयकारी समवसरण की रचना करता हूँ।

(कुबेर ने पलक झपकते ही समवसरण की अद्‌भुत रचना कर दी।)

सौधर्म इन्द्र—हे देवगण! चलिए, भगवान पार्श्वनाथ का केवलज्ञान कल्याणक मनाने के लिए शीघ्र चलिये।

दृश्य—(अहिछत्र जहाँ भगवान को केवलज्ञान हुआ था। वहाँ इन्द्रगण तथा देव-देवियाँ आ रहे हैं। समवसरण लगा हुआ है। 12 सभाओं में देव-देवियाँ, मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका तथा तिर्यंच (पशु-पक्षी) यथास्थान बैठ रहे हैं। समवसरण के मध्य कमलासन पर अधर देवाधिदेव केवलज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ विराजमान हैं। सौधर्म इन्द्र किंकर बनकर हाथ जोड़कर खड़ा है। मुनियों के कोठे में स्वयंभू आदि 9 गणधर तथा अनेक ऋद्धिधारी मुनि भी विराजमान थे।)

(ॐकार ध्वनि के रूप में दिव्यध्वनि प्रारंभ हुई)

दिव्यध्वनि के रूप में धर्मोपदेश—

(सर्वप्रथम पर्दे के पीछे से ॐ की ध्वनि करें। उसके बाद निम्न उपदेश भी पर्दे के पीछे से बोलें।)

उपदेश—अनादिकाल से जीव कर्म से सहित होकर जन्म-मरण करते हुए दुख उठा रहे हैं। क्रमशः कर्मों के भार को हल्का करते हुए दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय पशु आदि पर्यायों को धारण करते हुए बहुत कठिनाई से मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है। मनुष्य पर्याय मिलने पर भी जैन कुल में जन्म होना विशेष पुण्य के योग से होता है।

जैनकुल में जन्म लेकर शक्ति के अनुसार श्रावकधर्म अथवा मुनिधर्म को धारण करना चाहिए। श्रावकधर्म भी मोक्षमार्ग है। श्रावक अष्ट मूलगुणों का, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा 4 शिक्षाव्रत इस प्रकार 12 व्रतों का पालन करते हुए आगे ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हुए मुनि बनकर कर्मों का नाश कर अरहंत अवस्था प्राप्त करते हैं। पुनः 4 अघातियाकर्मों का भी क्षय करके सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। सच्चा सुख, अविनाशी सुख मोक्ष में ही प्राप्त होता है। वहाँ से जीव पुनः संसार में लौटकर नहीं आते हैं।

सभी जीवों को इसी प्रकार से संसार भ्रमण से छूटने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

(शंबर देव शांत चित्त होकर समवसरण में प्रवेश करता है)

शंबर देव—हे क्षमा मूर्ति! परमप्रभू आपने करुणा करके मेरे अज्ञान अंधकार को नष्ट कर दिया। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। मुझे अब अपने चरणों में जगह दीजिए।

निर्देशक—(परम आदर भक्ति के साथ भगवान की प्रदक्षिणा देकर नतमस्तक होते हुए शंबर देव सम्यग्दृष्टि बन गया। उस वन में रहने वाले सात सौ तापसियों ने भी मिथ्यात्व का त्यागकर सम्यग्दर्शन धारण किया। शुद्ध सम्यग्दृष्टि बन गये।)

(जैनाचार्य कहते हैं कि महापुरुषों के साथ मित्रता तो दूर रही, शत्रुता भी वृद्धि का कारण है।)

(भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण पाँच माह कम सत्तर वर्ष तक पूरे देश में भ्रमण करता रहा। जब प्रभु की आयु एक माह शेष रह गई तब प्रतिमायोग

धारणकर सम्मेद शिखर पर जाकर विराजमान हो गए।)

(दृश्य नं. 11)

दृश्य–(सम्मेदशिखर पर्वतराज पर ध्यानस्थ भगवान पार्श्वनाथ)

(श्रावण शुक्ला सप्तमी के प्रातःकाल का समय) (भगवान पार्श्वनाथ ने अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्षपद की प्राप्ति कर ली)

(सौधर्म इन्द्र का आसन कंपायमान हो रहा है जानकर अवधिज्ञान से निर्णय कर तत्क्षण भगवान पार्श्वनाथ का मोक्षकल्याणक मनाने के लिए असंख्य देव-देवियों को आदेश देता है।)

सौधर्म इन्द्र–सभी देवगण भगवान पार्श्वनाथ का मोक्षकल्याणक मनाने के लिए चलें।

(देव तथा इन्द्रों ने सम्मेदशिखर आकर निर्वाण कल्याणक की पूजा की, महामहोत्सव मनाया। मोक्ष होते ही भगवान के दिव्य परमौदारिक शरीर का अग्नि कुमार देव अपने मुकुट से अग्नि प्रज्ज्वलित कर संस्कार करते हैं। उस भस्म को सभी ने मस्तक पर लगाया।)

इन्द्र तथा देवगण–भगवान पार्श्वनाथ की जय, सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की जय। जैनधर्म की जय।

(आगे का भजन बोलकर सभी देव तथा इन्द्र वापस स्वर्ग को चले जाते हैं।)

(जहाँ अग्नि संस्कार हुआ वहाँ इन्द्र ने पार्श्वनाथ भगवान के चरणों की स्थापना की। आज भी असंख्य भक्तगण सम्मेदशिखर की पार्श्वनाथ टोंक पर जाकर भक्ति से वंदन-पूजन करके सातिशय पुण्य अर्जित करते हैं।)

(पार्श्वनाथ टोंक सहित सम्मेदशिखर बनाकर उस पर वंदनार्थ जाते हुए स्त्री-पुरुषों को दिखावें)

वंदनार्थ जाने वाले भक्तगण–सांवरिया पार्श्वनाथ की जय। सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की जय।

भजन

तर्ज-फूलों सा चेहरा तेरा.....

शाश्वत है तीरथ मेरा, सम्मेदगिरि नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुबन परम धाम है।
कहते हैं इस गिरि की वन्दना से,
तिर्यंच नरकायु मिलती नहीं है।
श्रद्धा सहित इसकी अर्चना से,
भव्यत्व कलिका खिलती रही है।।
रात अंधेरी हो, भक्ति सहेली हो, लगता न डर पर्वत पर कभी।
अतिशय से गूँजे यहाँ, सांवरिया का नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।1।।

इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में,
मोक्ष गए बीस जिनवर यहाँ से।
कितने करोड़ों मुनियों ने भी,
तप करके शिवालय पाया यहाँ से।।
तीर्थ पुराना है, श्रेष्ठ खजाना है, सबको तिराता है संसार से।
तीरथ की कीरत अमर, कर सकता इंसान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।2।।
जिनधर्म निधि को पाकर के उसका,
सच्चा सदुपयोग करना है हमको।
आपस में मैत्री, दीनों पे करुणा,
का भाव जग में सिखाना है सबको।।
स्वार्थ त्याग करके, शीघ्र जाग करके, जैनत्व की सब रक्षा करो।
तीरथ की रज ''चन्दना'' मस्तक का परिधान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।3।।